काम

डा० धनञ्जय वासुदेव द्विवेदी

सहायक प्रोफेसर, संस्कृत विभाग,

डा० श्यामा प्रसाद मुखर्जी विश्वविद्यालय, राँची

भारतीय मनीषियों ने 'काम' को भी पुरुषार्थ माना है। पुरुषार्थचतुष्टय में काम तृतीय स्थानीय है। इसका जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान है। 'काम' धर्म एवं अर्थ के समान ही पुरुषार्थ की सिद्धि का साधन है। वास्तव में मनुष्य की लोकयात्रा में जो स्थान धर्म और अर्थ का है, वही स्थान 'काम' का भी है। कामभावना और इन्द्रिय-सुख काम के प्रधान लक्षण हैं। व्यक्ति की समस्त कामनाएं, वासनाजन्य प्रवृत्तियाँ तथा आसक्तिमूलक वृत्तियाँ काम के अन्तर्गत आती हैं। अतः 'काम' मनुष्यजीवन की सहज प्रवृत्ति है, जो उसके इन्द्रिय सुख से सम्बद्ध है।

भ्वादिगणीय 'कमु' कान्तौ (इच्छार्थक) धातु से घञ् प्रत्यय लगाकर 'काम' शब्द निष्पन्न होता है। 'काम' शब्द 'काम्यते इति कामः' इस व्युत्पत्ति के आधार पर विषय और इन्द्रिय के संयोग से उत्पन्न मानसिक आनन्द, अर्थ बताता है। 'काम' शब्द 'इच्छा' और कामना को भी कहा जाता है। वस्तुतः मानव उन्हीं पदार्थों की इच्छा करता है जो उसे मानसिक और शारीरिक आनन्द देते हैं। वह अच्छे मकान में रहना चाहता है, अच्छा भोजन करता है, अच्छे वस्त्राभूषण चाहता है, अच्छे दृश्य देखना चाहता है, अच्छे शब्द सुनना चाहता है, अच्छे पदार्थ स्पर्श करना चाहता है, अच्छी पत्नी और अच्छा परिवार चाहता है, अपना उत्कर्ष चाहता है। अपनी ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों के द्वारा विभिन्न पदार्थों की जो इच्छा मनुष्य करता है और इन सब पदार्थों को पाने के लिए जो उद्योग करता है, तो वह 'काम' संज्ञा को प्राप्त कर लेता है। अपनी इच्छित वस्तु को पाकर जो आनन्द मिलता है, वही 'काम' है।

कोषग्रन्थों में 'काम' के अनेक अर्थ होते हैं-कामना, इच्छा, स्नेह, अनुराग, कामदेव, अभिलषित वस्तु, मैथुनेच्छा आदि।

E-Learning material prepared by Dr. Dhananjay Vasudeo Dwivedi

अतः स्पष्ट है कि इन्द्रिय और उसके विषय के संयोग से उत्पन्न आनन्द, इस आनन्द की प्राप्ति के साधन तथा इन साधनों को जुटाने की दृढ इच्छा-इन तीनों को 'काम' कहा जाता है। आनन्द और उससे सम्बन्धित साधनों को प्राप्त करने का मानसिक सङ्कल्प 'काम' कहलाता है ।

'काम' संसार के सभी प्राणियों में उनके मानसिक संकल्प का परिणाम है। सभी इससे उत्पन्न होते हैं और सभी इसी में विलीन भी हो जाते हैं।

'कामसूत्र' प्रणेता वात्स्यायन ने तो अपने ग्रन्थ की रचना ही 'कामपुरुषार्थ' के महत्त्व को प्रतिपादित करने तथा इस पुरुषार्थ के व्यावहारिक पक्ष को प्रस्तुत करने के लिए ही है। उनका मानना है कि पाँच ज्ञानेन्द्रियों की अपने मन के सङ्कल्प के अनुसार अपने-अपने विषय के प्रति सुखानुभूति के कारण जो प्रवृत्ति होती है, उस प्रवृत्ति को 'काम' कहते हैं।

कामसूत्रकार वात्स्यायन ने कामपुरुषार्थ के सेवन हेतु युवावस्था को उचित समय माना है-'कामं च यौवने'।

'काम' पुरुषार्थ प्रवृत्तिमूलक है पुरुषार्थ है। इसी पुरुषार्थ के कारण व्यक्ति अर्थ पुरुषार्थ को सिद्ध करता है। वर्णाश्रम व्यवस्था एवं सामर्थ्य के कारण, युवावस्था को इसीलिए उचित माना गया है, क्योंकि इसी समय व्यक्ति धर्मपूर्वक 'अर्थ' तथा 'काम' पुरुषार्थ की सिद्धि कर सकता है। 'काम' सुख है और सुख का साधन भी, इसीलिए व्यक्ति उसकी ओर प्रवृत्त होता है। उससे ही व्यक्ति के तन तथा मन को सन्तुष्टि मिलती है और सन्तुष्टि व्यक्ति को स्वस्थ और प्रसन्न रखती है। इसीलिए 'काम' सबके लिए आवश्यक है। मनुष्य सामान्य काम और विशिष्ट काम की ओर स्वाभाविक रूप से प्रवृत्त होती है। किन्तु इनकी अत्यधिक आसक्ति व्यक्ति को लक्ष्य से भ्रष्ट कर सकती है। इसीलिए सामान्य और विशिष्ट काम को मर्यादा से नियन्त्रित करने के लिए ही विवाह तथा यज्ञ का विधान किया गया है।

'काम' पुरुषार्थ का मुख्य उद्देश्य है तत्त्वज्ञानपूर्वक जीवन निर्वाह। विषय और इन्द्रिय के संयोग से जो आनन्द मिलता है, वह गौण उद्देश्य है क्योंकि जीवन-निर्वाह हेतु सेवन किया जाने वाला 'काम'

E-Learning material prepared by Dr. Dhananjay Vasudeo Dwivedi

मर्यादित होगा, आवश्यतानुसार होगा तथा धर्मार्थानुकूल होगा जबकि इन्द्रियप्रीतिविषयक 'काम' से व्यक्ति कभी सन्तुष्ट नहीं होगा। वस्तुतः तत्त्वज्ञान और स्वास्थ्य को दृष्टि में रखकर ही 'काम' का सेवन करना चाहिए, तभी वह पुरुषार्थ की कोटि में आ सकता है।

भगवान् श्रीकृष्ण ने दुःखविनाशक योग की सिद्धि, उचित आहार-विहार, कर्मों के प्रति यथायोग्य चेष्टा और उचित शयन तथा जागरण के पश्चात्, मानकर काम पुरुषार्थ की उपादेयता को स्वीकार किया है।

मनुष्य की स्वाभाविक जीवन-यात्रा के लिए आवश्यक होने के कारण 'काम' को पुरुषार्थ माना गया है। किन्तु धर्मानुकूल होकर यह मोक्षरूप महान् पुरुषार्थ का ही साधन है। अतएव यदि इसका सेवन धर्मविरुद्ध किया जायेगा, तो व्यक्ति का पतन हो जायेगा क्योंकि वह 'काम' सेवन हेतु अनुचित मार्ग की ओर अग्रसर होगा। इन्द्रियसुख के साधनों का सम्पादन अधर्मपूर्वक करेगा। फलस्वरूप उसकी बाह्य और आभ्यन्तर उन्नति नहीं हो सकेगी।

काम पुरुषार्थ का सेवन अर्थानुसार भी करना चाहिए। अर्थात् व्यक्ति को 'काम' सम्बन्धी जितने भी साधन हैं, उन्हें न्यायपूर्वक अर्जित किए हुए धन से जुटाना चाहिए। जितना धन उसके पास है, उसके अनुसार ही जुटाना चाहिए अन्यथा जीवन अव्यवस्थित हो जायेगा।

महाभारत में धर्म और अर्थ के विरुद्ध काम का सेवन बुद्धिनाश का कारण माना गया है। धर्मार्थविरुद्ध 'काम' 'लोलुपता' और व्यसन में परिणत हो जाता है। ऐसे कामलोलुप व्यक्ति परधन और परस्त्री के प्रति भी आसक्त हो जाते हैं और कलङ्कित भी हो जाते हैं। अतएव परस्त्री, परद्रव्य और परभूमि के प्रति आसक्त नहीं होना चाहिए, अन्यथा ऐसे व्यक्ति विपत्तिग्रस्त हो सकते हैं। गीता में कहा गया है कि काम रजोगुण से उत्पन्न होता है और वही क्रोध भी है। वह अग्नि के सदृश कभी भोगों से तृप्त नहीं होता। वस्तुतः ऐसा काम मनुष्य का सबसे बड़ा शत्रु है-

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः ।

महाशनो महापाप्मा विद्धयेनमिह वैरिणम् ॥

उक्त श्लोक में शाङ्करभाष्य में स्पष्ट कहा गया है काम सभी का शत्रु है और उसी के कारण प्राणियों को सभी अनर्थों की प्राप्ति होती है। धर्मविरुद्ध काम से ज्ञान उसी प्रकार आच्छादित हो जाता है, जिस प्रकार धुयें से अग्नि। यदि मनुष्य इन्द्रियसंयम नहीं कर सकता है और सदा काम की तृप्ति के लिए विषयभोग में संलग्न रहता है तो उसका एक दुष्परिणाम तो यह होता है कि काम्य वस्तुओं के उपभोग से काम को कभी तृप्त नहीं होता, उल्टे वह बढ़ता ही जाता है। मनुस्मृति में कहा गया है-

न जातु कामः कामानुपभोगेन शाम्यति ।

हविषा कृष्णवत्मैर्व भुय एवाभिवर्धते ॥

अर्थात् जैसे अग्नि में घी डालने से वह अधिक प्रज्वलित होती है, वैसे भोग भोगने से कामना शांत नहीं होती, उल्टे प्रज्वलित होती है

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि काम के बहु-आयामी महत्त्व को अस्वीकार नहीं किया जा सकता है। परन्तु मनुष्य को इस बात का सदा ध्यान रखना चाहिए कि काम का दुरुपयोग न हो। वस्तुतः काम का अनुसरण करते समय उसके फल-प्रतिफल तथा गुण-अवगुण का भी सर्वदा ध्यान रखना आवश्यक माना गया। यदि काम अनियन्त्रित होगा तो निस्सन्देह वह अनेक प्रकार के अनर्थों का जनक होगा। काम को धर्माश्रित होना चाहिए।

E-Learning m